जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

हमारा यह भव, भव का अभाव करने के लिए है, किसी पक्ष या सम्प्रदाय के पोषण के लिए नहीं।

ह्न आप कुछ भी कहो, पृष्ठ :39

वर्ष : 29, अंक : 11 | सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
सितम्बर (प्रथम), 2006 | प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

विद्वत्परिषद के नवनिर्वाचित राष्ट्रीय अध्यक्ष का उद्बोधन

दिनांक 30 जुलाई, 2006 को विद्वत्परिषद की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में सर्वसम्मति से पुन: चुने गये राष्ट्रीय अध्यक्ष माननीय डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा इस अवसर पर दिया गया मार्मिक उद्बोधन इसप्रकार है -

परमादरणीय वर्णीजी के मंगल आशीर्वाद से स्थापित 57 वर्ष पुरानी इस अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् की अध्यक्षता का भार आप सब मेरे इन निर्बल कंधों पर दुबारा डाल रहे हैं। आप सबके हृदय में मेरे प्रति जो वात्सल्य भाव है, मुझमें जो अटूट विश्वास है - यह सब उसका ही परिणाम है। तदर्थ मैं आप सबका आभारी हूँ।

जिस संस्था के अध्यक्ष पद पर कभी वर्णीजी जैसे महान सन्त रहे हों; उस संस्था के अध्यक्ष पद पर दूसरी बार स्थापित होने से जहाँ एक ओर गौरव का अनुभव हो रहा है; वहीं दूसरी ओर संकोच भी हो रहा है।

मैं हृदय की गहराई से अनुभव करता हूँ कि हम सबके परम सौभाग्य से ही हमें जिनवाणी के अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

इस अवसर का हम सबको पूरा-पूरा लाभ लेना चाहिये; क्योंकि इस कलिकाल में एकमात्र जिनवाणी ही परम शरण है। जिसके हृदय में जिनागम के प्रति आस्था नहीं है, जिसकी रुचि परमागम में नहीं है; वह व्यक्ति इस महान दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का सदस्य होने योग्य भी नहीं है; क्योंकि इसे आजतक महान सन्तों और आगम-परमागम में निष्ठा रखने वाले विद्वानों ने ही आगे बढ़ाया है।

24 वें तीर्थंकर भ. महावीर की दिव्यध्वनि में समागत और आचार्य परम्परा द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान को आत्महित के साथ-साथ जन-जन तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व हम सब विद्वानों के कंधों पर ही है। इसलिये हम सभी का परम कर्त्तव्य है कि जगत के अन्य प्रपंचों और व्यर्थ के विवादों से दूर रहकर अपने जीवन को तत्त्वमंथन, तत्त्वचिन्तन और तत्त्वप्रतिपादन में ही समर्पित कर दें। इसमें ही हम सबका हित है।

आजकल मैं देखता हूँ कि हमारे अनेक साथी व्यर्थ के सामाजिक विवादों में उलझे रहते हैं, सामाजिक क्रियाकलापों की आलोचना-प्रत्यालोचना में अपने समय और शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं; इसप्रकार अपनी विद्वता का दुरुपयोग कर रहे हैं।

हम जिनवाणी माता के सुपुत्र हैं, हमें उसकी गरिमा का ख्याल रखना चाहिये। जिनवाणी का गहराई से अध्ययन कर उसको मृदुभाषा में प्रस्तुत करना हमारा कार्य है। आरोप-प्रत्यारोपों में अपनी वाणी और लेखनी का दुरुपयोग करना हमें शोभा नहीं देता; क्योंकि विद्वानों को गणधरदेव की गद्दी का उत्तराधिकारी माना जाता है।

मेरा आप सबसे विनम्र अनुरोध है कि हम प्रतिदिन दो-चार घंटे स्वाध्याय अवश्य करें और कम से कम दिन में एक बार मन्दिरजी में प्रवचन करें। यदि यह संभव न हो तो वहाँ प्रतिदिन होने वाली शास्त्रसभा में शामिल हों, दश-पाँच लोगों को इकट्ठा कर गोष्ठी चलायें। इसमें ही हमारे जीवन की सार्थकता है।

यह तो हम सब जानते ही हैं कि विगत काल में विद्वत्परिषद् के नब्बे प्रतिशत सदस्य प्रवचनादि कार्य करते थे; किन्तु अब यह अनुपात निरंतर कम हो रहा है; जो चिन्ता का विषय है। आज की स्थिति तो यह है कि ठोस विद्वत्ता का अभाव होता जा रहा है और पल्लवग्राही पांडित्य बढ़ रहा है।

इस बात की चर्चा मैंने दो वर्ष पूर्व दिये गये अध्यक्षीय भाषण में भी की थी। उक्त सन्दर्भ में विगत अध्यक्षों के उद्धरण भी प्रस्तुत किये गये थे। उनकी भी इसीप्रकार की भावना रही है। आप सबकी जानकारी के लिए उक्त अध्यक्षीय भाषण की प्रति संलग्न है।

अपने को विद्वान मानने वाले कुछ लोग व्यक्तिगत और सामूहिक स्वाध्याय में तो अपना समय रंचमात्र भी नहीं लगाते; किन्तु जिसका कोई सुफल प्राप्त होने वाला नहीं ह्न ऐसी उठापटक में लगे रहते हैं। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी इस अपील पर गंभीरता से विचार करें।

विद्वता की गरिमा की सुरक्षा की दृष्टि से मैंने जो निवेदन किया है, उससे यदि किसी के चित्त को आघात लगा हो तो मैं उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ और उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यह सब मैंने हार्दिक वात्सल्यभाव से ही लिखा है, विद्वेषवश नहीं।

तीर्थस्थानों, जिनमंदिर और जिनागम के सन्दर्भ में जो सामाजिक समस्याएँ आती हैं, उनके सन्दर्भ में यदि समाज विद्वत्परिषद् और उसके विद्वानों का व्यक्तिगत या सामूहिक सहयोग, सलाह आदि चाहे तो हमें अपने उत्तरदायित्व से मुख नहीं मोड़ना है। सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से भी सब प्रकार से सहयोग करना है; परन्तु पक्ष-विपक्ष में उलझकर तथाकथित नेताओं के हाथ का खिलौना नहीं बनना है।

(शेष पृष्ठ - 4 पर ...)

सम्पादकीय –

ये तो सोचा ही नहीं

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

११. पति के स्थान की पूर्ति संभव नहीं

(गतांक से आगे....)

कुछ अदूरदर्शी लोग मिलकर उसे किसी अधेड़ या अधबूढ़े विधुर के माथे मढ़कर बिना प्रसव पीड़ा सहे ही छोटी-सी उम्र में ही अनेक बेटे-बेटियों की माँ बना देने पर तुल जाते हैं जो किसी भी अपेक्षा उचित नहीं है।

ऐसा दुर्व्यवहार करते समय ऐसे दुष्ट प्रकृति के नर-नारी यह भूल जाते हैं कि काश ! यह दुर्घटना हमारे ऊपर अथवा हमारी प्राण प्यारी बहिन-बेटियों पर ही घट जाये और हमारे साथ भी दूसरों के द्वारा ऐसा ही व्यवहार किया जाने लगे तब हम पर क्या बीतेगी ? और ऐसा होना कोई असम्भव तो है नहीं। कोई भी व्यक्ति कभी भी दुर्घटना का शिकार हो सकता है। अत: 'आत्मना प्रतिकुलानि परेसां न समाचरेत्'अर्थात् जो दूसरों का व्यवहार हमें स्वयं को अच्छा न लगे, वह व्यवहार हमें दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।'

रूपश्री ने अपने कौमार्य काल में, अपनी बीस बर्षीय छोटी-सी जीवन यात्रा में आस-पास रहने वाली अनेक विधवाओं की दुर्दशा अपनी आँखों से देखी थी। इसकारण उसके हृदय में विधवाओं के प्रति बहुत करुणा एवं सहानुभूति की भावना थी। उसे क्या पता था कि ये दुर्दिन उसके स्वयं के जीवन में आनेवाले हैं।

शादी के बाद पहली मुलाकात में ही प्रथम परिचय के दौरान ही जब रूपेश ने रागवर्द्धक प्रेमालाप करने के बजाय रूपश्री को यह समझाने की कोशिश की कि - **कल्पना करो ! कदाचित् किसी दुर्घटना से हम दोनों सदा-सदा के लिए बिछुड़ जायें, अकेले रह जायें, तो.....?**

रूपश्री रूपेश की इस अप्रिय, कर्णकटु बात पर कुछ सोचे - यह तो संभव ही नहीं था, उस समय तो वह ऐसी बात सुन भी नहीं सकी। अत: वाक्य पूरा कर पाने के पहले ही रूपेश ने रूपश्री के मुँह पर हाथ रख दिया।

रूपश्री की आँखों में आँसू आ गये, वह आँसू पोछते हुए बोली - अब कहा सो कहा, भविष्य में कभी ऐसा शब्द भी मुँह पर मत लाना। मैं तो ऐसा सुन भी नहीं सकती। ऐसे सुखद प्रसंग में आप ऐसी दु:खद बातें क्यों करते हो ? ऐसी अपशकुन की बात तुम्हारे मन में आई ही कहाँ से और कैसे ?

उदास भाव से नाराजी प्रगट करते हुए रूपश्री ने पुन: कहा - आप ऐसी बातें करेंगे तो मैं आपसे बात ही नहीं करूँगी।

रूपेश ने कहा - मैंने ऐसा क्या कह दिया ? तुम बिना कारण ही रूठ गईं। अरे ! वैसे तो सब अच्छा ही होनेवाला है; परन्तु देखो रूपश्री ! **सौभाग्य को दुर्भाग्य में पलटते देर नहीं लगती। अत: दूरदृष्टि से जीवन के प्रत्येक पहलू पर गंभीरता से विचार कर लेने में हर्ज ही क्या है ? अपने सोचने या कहने से दुर्घटना का क्या संबंध है ? होता तो वही है जो होना होता है। यदि हम हर परिस्थिति का सामना करने के लिए पहले से सजग व सावधान रहें तो ऐसी विषम परिस्थिति में 'किम् कर्तव्य विमूढ़' नहीं होते। अत: न सही आज, पर समय रहते सचेत तो हो ही जाना चाहिए।** बस इसी विकल्प से मैंने इस चर्चा को महत्त्वपूर्ण व उपयोगी समझकर छेड़ दिया। तुम्हें इतना बुरा लगेगा - ऐसा समझता तो आज न कहकर फिर कभी कह लेता। अस्तु! कोई बात नहीं। तुम इन शकुन-अपशकुन के दकियानूसी विचारों को छोड़ो और जो बातें तुम्हें अभी अच्छी लगें, वही कहो। मैं अपने शब्द वापिस लिए लेता हूँ, पर तुम्हें सदैव हिम्मत से काम लेना सीखना चाहिए और हर परिस्थिति का सामना करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।'' भयभीत नहीं होना चाहिए।

कोई कटु सत्य सुन सके या न सुन सके, सह सके या न सह सके, पर जो सुख-दु:ख होना होता है, वह तो होकर ही रहता है।

रूपश्री कुछ ही समय में उस दुर्घटना का शिकार हो गई, जिसे वह प्रथम परिचय के दिन सुन भी नहीं सकी थी। अब वे सारे दृश्य जो उन दोनों के बीच बातचीत करते घटे थे, रूपश्री की आँखों में उतर आये।

रूपश्री दुर्घटना में पति को दिवंगत देख मूर्च्छित-सी हो गई, अवाक् रह गई थी। रोना चाहकर भी रो नहीं पा रही थी। उसके आँसू झलकने के बजाय अन्दर ही अन्दर सूख गये थे। आँखें फटी की फटी रह गईं थीं। जब रोना चालू हुआ तो ऐसी रोई कि उसे रोता देख सारा वातावरण शोक-संतप्त हो गया, सभी उपस्थित प्राणी दु:खी हो गये।

रूपेश के आकस्मिक निधन से रूपश्री का स्वप्निल-संसार उजड़ चुका था। उसके सारे मनोरथ मन के मन में ही रह गये थे। उसकी सारी मनोकल्पनायें सुहागिन बनने के साथ ही बिखर गईं।

नारी का सुहाग सदा के लिए छिन जाना नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। वह धैर्य धरे भी तो कैसे? **आत्मज्ञान का बल, वस्तु के स्वतंत्र परिणमन की श्रद्धा और अपनी होनहार एवं पुण्य-पाप के फल का विचार ही एकमात्र उपाय है, जिसके बल पर बड़ी से बड़ी प्रतिकूलता में भी समतापूर्वक रहा जा सकता है,** परन्तु वह अभी उससे अनभिज्ञ थी।

उसकी आँखे झरने बन गईं,जिनसे दिन-रात आँसू झरते ही रहते। गीली आँखें कभी सूखतीं ही नहीं। यह हालात देख समय-समय पर माँ की ममता उमड़ पड़ती। समझाते-समझाते माँ स्वयं भी फूट-फूट कर रो पड़ती।

रूपश्री का दु:ख किसी से देखा नहीं जाता। आस-पड़ौस की, मुहल्ले की महिलायें उसे समझाने, सहानुभूति दिखाने आतीं; पर उसके विलाप को देखकर स्वयं रो पड़तीं, समझाने का असफल प्रयास करतीं; पर स्वयं के आँसू भी नहीं रोक पातीं। अभी हाथों की मेंहदी रंग भी नहीं ला पायी कि दुर्दैव ने उसके पहले ही उसके हाथों की मेंहदी और माथे का सिन्दूर पोंछ डाला।

माँ के गले से चिपकी रूपश्री रोते-रोते इतनी थक जाती कि उसका अंग-अंग शिथिल हो जाता। सिसकियाँ भरते-भरते वह मूर्छित-सी होकर माँ की गोद में ही लुढक जाती। यह कोई एक दिन की बात नहीं थी। ऐसे रोते-बिलखते उसे महीनों बीत गये।

रूपश्री के सास-श्वसुर ने तो यह कहकर छुट्टी पा ली थी कि - अभागिन ने नागिन बनकर ब्याह होते ही हमारे लाल को डस लिया। हम तो कलमुँही का मुँह भी नहीं देखना चाहते।

बस, अब तो रूपश्री को एकमात्र माँ का ही सहारा था। माँ बेचारी पहले से ही विपरीत परिस्थितियों से जूझ रही थी। एक और नया संकट आ पड़ा उसके माथे पर। बड़ी बेटी धनश्री का पति भी प्रारंभ में शराबी निकल गया था, बेटा बचपन से ही अपंग पैदा हुआ, पति मोहन भी साधारण-सी तृतीय श्रेणी का कर्मचारी था; इसकारण 'नो खाये तेरह की भूख' बनी ही रहती। **(क्रमश:)**

प्रवचनसार का सार 58

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

बाईसवाँ प्रवचन

प्रवचनसार परमागम में समागत चरणानुयोग सूचक चूलिका पर चर्चा चल रही है; जिसमें अभी तक २१९वीं गाथा तक चर्चा हो चुकी है। गाथा २०१ से प्रारम्भ होनेवाली इस चरणानुयोगसूचक चूलिका में निम्नांकित अवान्तर अधिकार हैं। पहले अवान्तर अधिकार का नाम आचरणप्रज्ञापन है, जो गाथा २०१ से २३१ तक चलता है। दूसरे अवान्तर अधिकार का नाम मोक्षमार्गप्रज्ञापन है, जो गाथा २३२ से २४४ तक है, तीसरे अवान्तर अधिकार का नाम शुभोपयोगप्रज्ञापन है; जो गाथा २४५ से २७० तक है और अन्तिम पाँच गाथाओं के प्रकरण को पंचरत्न कहते हैं।

आचरणप्रज्ञापन में अबतक हुई चर्चा के संदर्भ में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब परद्रव्य के कारण आत्मा को रंचमात्र भी सुख-दु:ख नहीं होता, बंध नहीं होता; तब परिग्रह तो परद्रव्य है, उसके त्याग की बात क्यों की जाती है ?

इसका उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा है कि यद्यपि परद्रव्य के कारण रंचमात्र भी सुख-दु:ख नहीं होता; तथापि परद्रव्य की उपस्थिति इस बात की सूचक है कि हमारा परद्रव्य के प्रति एकत्व-ममत्व है; अतएव परद्रव्य का त्याग अत्यंत आवश्यक है। वस्तुत: यह त्याग परद्रव्य का नहीं; अपितु उसके प्रति होनेवाले एकत्व-ममत्व का त्याग है, उसके प्रति होनेवाले राग का त्याग है।

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिदो।।

(हरिगीत)

यदि भिक्षु के निरपेक्ष न हो त्याग तो शुद्धि न हो।
तो कर्मक्षय हो किसतरह अविशुद्ध भावों से कहो।।२२०।।

यदि निरपेक्ष त्याग न हो तो भिक्षु के भाव की विशुद्धि नहीं होती और जो भाव में अविशुद्ध है; उसके कर्मक्षय कैसे हो सकता है ?

इस गाथा की टीका का भाव इसप्रकार है ह्न

''जैसे छिलके के सद्भाव में चावलों में पाई जानेवाली रक्ततारूप अशुद्धता का त्याग नहीं होता; उसीप्रकार बहिरंग संग के सद्भाव में अशुद्धोपयोगरूप अंतरंग छेद का त्याग नहीं होता और उसके सद्भाव में शुद्धोपयोगमूलक कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि नहीं होती।

इससे ऐसा कहा गया है कि अशुद्धोपयोगरूप अंतरंग छेद के निषेधरूप प्रयोजन की अपेक्षा रखकर किया जानेवाला उपधि का निषेध अन्तरंग छेद का ही निषेध है।''

छिलके सहित चावल को धान कहते हैं। छिलके के नीचे और चावलों के ऊपर जो लाल-लाल भाग होता है; उसे धोकर, कूटकर हटाया जाता है। जबतक छिलका नहीं हटाया जाय, तबतक उस लाल हिस्से को भी नहीं हटाया जा सकता। उसीप्रकार जबतक परिग्रह का त्याग नहीं हो, तबतक शुद्धोपयोग संभव नहीं है।

मैं एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ कि यह वही गाथा है जिसका आश्रय लेकर लोग कहते हैं कि शुद्धोपयोग मुनियों के ही होता है; क्योंकि इस टीका में लिखा है कि परिग्रह के त्याग के बिना शुद्धोपयोग संभव नहीं है। अरे भाई ! इसका समाधान यह है कि यह गाथा इस अर्थ में है कि मुनियों के योग्य जो शुद्धोपयोग होता है; वह रंचमात्र भी परिग्रह होगा तो नहीं होगा।

उपधि अर्थात् परिग्रह ऐकान्तिक अन्तरंग छेद है। यदि बाह्य में परिग्रह विद्यमान है तो वह अन्तरंग छेद है। उस परिग्रह को यह कहकर नहीं रखा जा सकता कि यह तो बाहर की चीज है, परद्रव्य है, पुण्य के उदय से मिली है।

इस सन्दर्भ में गाथा २२१ की टीका का भाव इसप्रकार है ह्न

''उपधि के सद्भाव में, (१) ममत्व-परिणाम जिसका लक्षण है ह्न ऐसी मूर्छा, (२) उपधि संबंधी कर्मप्रक्रम के परिणाम जिसका लक्षण है ह्न ऐसा आरम्भ, अथवा (३) शुद्धात्मस्वरूप की हिंसारूप परिणाम जिसका लक्षण है ह्न ऐसा असंयम अवश्यमेव होता ही है; तथा उपधि जिसका द्वितीय हो (अर्थात् आत्मा से अन्य ऐसा परिग्रह जिसने ग्रहण किया हो) उसके परद्रव्य में लीनता होने के कारण शुद्धात्मद्रव्य की साधकता का अभाव होता है; इससे उसके ऐकान्तिक अन्तरंग छेदपना निश्चित होता ही है ह्न ऐसा निश्चित करके उसे सर्वथा छोड़ना चाहिये।''

इस टीका में कहा है कि जहाँ उपधि होगी; वहाँ मूर्छा भी रहेगी, आरम्भ भी होगा एवं तत्सम्बंधी असंयम भी होगा; इसलिए उपधि अर्थात् परिग्रह का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिए।

इसके बाद ग्रन्थ में यह चर्चा है कि पूरी उपधि तो त्यागी नहीं जा सकती; क्योंकि पीछी-कमण्डलु और शास्त्र तो रखने ही पड़ेंगे; पर उनका नाम उपकरण है, उपधि नहीं। अरे भाई ! जो करने योग्य कार्य है अर्थात् शुद्धोपयोग है, उसका नाम है करण और जो उस कार्य में सहयोगी होते हैं, उन्हें कहते हैं उपकरण।

उपकरणों में पीछी तो अहिंसक जीवन का उपकरण है, संयम की जरूरत है और जीव-जन्तुओं की रक्षा के लिए आवश्यक है। कमण्डलु शुद्धि का उपकरण है; क्योंकि मल-मूत्र का क्षेपण तो रोका नहीं जा सकता; उनकी शुद्धि भी आवश्यक ही है। तीसरा उपकरण शास्त्र या गुरु के वचन हैं।

जैसा कि गाथा २२२ में लिखा है ह्न

छेदो जेण ण बिज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता।।

(हरिगीत)

छेद न हो जिसतरह आहार लेवे उसतरह।
हो विसर्जन नीहार का भी क्षेत्र काल विचार कर।।२२२।।

जिस उपधि के (आहार-नीहारादि के) ग्रहण-विसर्जन में सेवन करनेवाले के छेद नहीं होता; उस उपधियुक्त कालक्षेत्र को जानकर इस लोक में श्रमण वर्तें।

अब, प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब मुनि को पीछी, कमण्डलु और शास्त्र रखने की अनुमति है; तब ये सब मार्ग के अन्तर्गत ही माने जाएंगे ? इसका समाधान करते हुए आचार्य ने कहा कि मार्ग दो प्रकार का होता है ह्न पहला तो उत्सर्ग मार्ग और दूसरा अपवाद मार्ग। ये पीछी-कमण्डलु सहित मार्ग अपवाद मार्ग है। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

साप्ताहिक गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

1. **जयपुर (राज.) :** श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की चतुर्थ गोष्ठी दिनांक 13 जुलाई, 06 को श्री पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र चूलगिरि-खानियांजी जयपुर में **ग्यारह प्रतिमा : एक चिंतन** विषय पर सम्पन्न हुई।

गोष्ठी की अध्यक्षता पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के प्रकाशन मंत्री ब्र. यशपालजी जैन ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटिल आदि मंचासीन थे। गोष्ठी का संचालन प्रशांत उखलकर गोवर्धन एवं मंगलाचरण निखिल जैन मुंगावली ने किया। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में दर्शन शाह मुम्बई एवं अभिजीत अलगोंडर शेडबाल का चयन किया गया।

2. दि. 6 अगस्त, 06 को **हम और हमारा सदाचार** विषय पर आयोजित पंचम गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ.दीपकजी शास्त्री, जयपुर ने की। गोष्ठी में उपाध्याय वर्ग से प्रथम स्थान जयेश जैन एवं शास्त्री वर्ग से दीपक मजलेकर ने प्राप्त किया। संचालन किशोर धोंगड़े व मंगलाचरण संभव जैन ने किया।

3. इसी श्रृंखला में षष्ठम साप्ताहिक गोष्ठी दि. 20 अगस्त को **दशलक्षण महापर्व : एक तत्त्वविचार** विषय पर आयोजित हुई; जिसकी अध्यक्षता पण्डित पीयूषजी शास्त्री, जयपुर ने की। शास्त्री वर्ग की इस गोष्ठीमें श्रेष्ठ वक्ता का स्थान उमेश घोसरवाडे एवं वी. संतोष ने प्राप्त किया। संचालन अर्पित जैन बडामलहरा व मंगलाचरण राहुल जैन नौगॉव ने किया। **– रोहन रोटे व अंकुर जैन**

(पृष्ठ 1 का शेष .....)

हल्के स्तर पर नहीं उतरना है, विद्वत्ता की गरिमा को बनाये रखना है। हमारी भाषा शालीन और प्रतिपादन सशक्त किन्तु संयत होना चाहिये, विनम्र होना चाहिये।

हमारी भावी योजनायें भी इसी दिशा में बननी चाहिये। हमें किसी के पक्ष या विपक्ष में कुछ नहीं करना है। हम तो ऐसा कुछ करें; जिससे समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़े, तत्त्वज्ञान की रुचि जाग्रत हो, सदाचार सुरक्षित रहे।

कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि हम तो मात्र हर सामाजिक प्रवृत्ति पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने तक सीमित होकर रह गये हैं। यह स्थिति अच्छी नहीं है। हमें कुछ रचनात्मक कार्य करना चाहिये। आशा है आप सब भी मेरे विचारों से सहमत होंगे और इस दिशा में सक्रिय होंगे।

श्री अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के इस राष्ट्रीय अधिवेशन के आयोजन हेतु श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के पदाधिकारियों ने हमें समय दिया और श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने अपने भवन में स्थान दिया; इसके लिए मैं विद्वत्परिषद् की ओर से उनका हृदय से आभार मानता हूँ। इसके साथ ही विद्वत्परिषद् के जो सदस्य इस कार्य के लिए दूर-दूर से पधारे हैं; मैं उनका भी आभारी हूँ।

आप सबने अधिवेशन में पधारकर अपना सक्रिय सहयोग तो प्रदान किया ही है; साथ में मुझमें विश्वास भी व्यक्त किया है। इसके लिए भी मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

आप सभी सामाजिक एकता व धर्मप्रचार के कार्य में इस विद्वत्परिषद् को महत्वपूर्ण सहयोग देंगे – इसी आशा और विश्वास के साथ विराम लेता हूँ। ●

वैराग्य समाचार

1. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक पण्डित शाकुलजी शास्त्री, मेरठ (उ.प्र.) के पिताजी श्री मगेन्द्रकुमारजी जैन का दिनांक 17 अगस्त, 2006 को 65 वर्ष की आयु में शारीरिक अस्वस्थता के कारण देहावसान हो गया है। आप धर्मप्रेमी एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। स्थानीय गतिविधियों में आपका सदैव सहयोग रहता था। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति को 500/- रुपये प्राप्त हुए है।

2. **कुचामनसिटी (राज.) निवासी** श्री हीरालालजी पहाडिया का 2 जुलाई, 06 को शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आप धार्मिक विचारवन्त एवं स्वाध्यायप्रियपुरुष थे। आपकी स्मृति में श्री संतोषकुमारजी पहाडिया द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति को 500/- रुपये प्राप्त हुए।

3. **फिरोजाबाद निवासी** श्रीमती मालादेवीजी जैन ध.प. श्री प्रेमचन्दजी जैन का दिनांक 14 अगस्त, 2006 को शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया है। आप अत्यन्त स्वाध्यायी एवं धर्मप्रेमी महिला थी ज्ञातव्य है कि आप श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित नवीनकुमारजी शास्त्री, फिरोजाबाद की दादी थी।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो – यही भावना है।

जयपुर शिविर 28 सितम्बर से 7 अक्टू. 06 तक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर द्वारा प्रतिवर्ष दशहरे के अवसर पर लगनेवाले शिविर की तिथि इसवर्ष **गुरुवार, दिनांक 28 सितम्बर से शनिवार, 7 अक्टूबर 2006** तक लगना निश्चित की गई है।

अत: समस्त साधर्मी भाई बहिनों को **तिथि का ध्यान रखते हुये** शिक्षण शिविर में पधारने का भावभीना आमंत्रण है।

साधना चैनल पर रात्रि 10.20 से डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के प्रवचनों को देखना/सुनना न भूलें।

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) सितम्बर (प्रथम) 2006
RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127